# त्रिभाष्यरत्न एवं वैदिकाभरण का समीक्षात्मक अध्ययन

**संस्कृत विषय में पी-एच. डी. की उपाधि हेतु**

**प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की प्रस्तावित रूपरेखा**

**२०१४**


निर्देशक-

डॉ० अभिमन्यु

असि० प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

कला संकाय, डी० ई० आई०,

दयालबाग, आगरा

शोधार्थी-

भगत सिंह आर्य

एम. ए. संस्कृत


अध्ययनक्षेत्र - संस्कृत व्याकरण


विभागाध्यक्ष एवं संकाय प्रमुख

प्रो० (श्रीमती) उर्मिला आनन्द

संस्कृत विभाग, कला संकाय,

दयालबाग शिक्षण संस्थान (डीम्ड यूनिवर्सिटी)

दयालबाग, आगरा २८२००५

## त्रिभाष्यरत्न और वैदिकाभरण का समीक्षात्मक अध्ययन

वेदांगों में शिक्षा का अन्यतम स्थान है। शिक्षा वेदांगों में दो प्रकार का साहित्य समुपलब्ध होता है, एक प्रातिशाख्य और दो शिक्षा। विषय के रूप में शिक्षा का विवेचन यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, किन्तु ग्रन्थ के रूप में कोई शिक्षा विषयक रचना प्रातिशाख्यों से पूर्व की नहीं हैं। प्रातिशाख्य ग्रन्थों में शिक्षा के सिद्धान्तों का सुव्यवस्थित विवेचन मिलता है। प्रातिशाख्यों की रचना वैदिक शाखाओं की ध्वनि विषयक जानकारी के व्यावहारिक उद्देश्यों को सामने रखकर की गई थी।

वेद अपने निर्माण से लेकर ब्राह्मण ग्रन्थों तक श्रुति परम्परा से सुरक्षित चले आये थे। जब वैदिककालीन बोलचाल की भाषा अपने प्राचीन मुहावरों एवं भाषागत विशेषताओं को छोड़कर आगे बढ़ गई या संकुचित हो गई तब उसके उच्चारण में अन्तर आने लगा और उसका उसी रूप में उच्चारण कठिन हो गया। वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण को मौखिक परम्परा में तब तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था जब तक छन्द स्वर संस्कार आदि विषयक सामान्य नियम न बनाये जायें। इस बात की आवश्यकता तब अनुभव की गई जब तक विभिन्न चरणों में उच्चारण सम्बन्धी भेद स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव में न आने लगे। अपनी शाखा के उच्चारण स्वर तथा छन्द सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों का अधिक महत्व दिया जाने लगा। क्योंकि मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण उसके अर्थ को बदल देता है। अतः अपनी शाखा की पाठरक्षा के उपायों में से एक उपाय प्रातिशाख्य ग्रन्थों का प्रणयन था।

प्रातिशाख्य वेद के लक्षण ग्रन्थ हैं। इनके द्वारा वेद का बाह्य स्वरूप निर्दिष्ट किया जाता है। वेदाभ्यास के ५ प्रकार हैं- अध्ययन, विचार, अभ्यास, जप और अध्यापन। विचार दो प्रकार का होता है- १. अर्थतः २. लक्षणतः। बिना अर्थ के ज्ञान अधूरा है। जैसा कि निरुक्तकार कहते हैं-

**स्थाणुरयं भारहारः किलाऽभूत् अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।**

**योऽर्थज्ञो इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ।।** निरुक्त १.६

माधवीया धातुवृत्ति के भ्वादिगण के अन्तर्गत शाखृ धातु से शाखा शब्द निष्पन्न होता है। शाखायाम् शाखायाम् प्रति – प्रतिशाखम्, प्रतिशाखेषु भवम् प्रातिशाख्यम् , **अव्ययीभावाच्च** (अष्टा. ४.३.५१) सूत्र से भावार्थ में "ञ्य" प्रत्यय से प्रातिशाख्य शब्द निष्पन्न होता है। परम्परा से प्रातिशाख्यों को शिक्षा के अन्तर्गत माना जाता

रहा है। कुछ आचार्य प्रातिशाख्यों को व्याकरण के अन्तर्गत मानते हैं। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने प्रातिशाख्य को चरणवाची मानते हैं। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य की वैदिकाभरण वृत्ति के उपान्त्य सूत्र की अवतारिका में आचार्य गार्ग्य गोपालयज्वा का कथन है कि प्रातिशाख्य व्याकरण प्रधान ग्रन्थ हैं-

**"शिक्षागणोपदिष्टं तु कार्यं नाम संगृहीतं व्याकरणप्रधानत्वात्**

**प्रातिशाख्यस्य"** वैदिकाभरण २४.५

वस्तुतः प्रातिशाख्य न तो पूर्णरूप से व्याकरण ग्रन्थ हैं, न ही पूर्ण रूप से शिक्षा ग्रन्थ ही। वास्तव में इनमें दोनों का समन्वय है। इन्हें व्याकरण का प्राचीन रूप माना जा सकता है किन्तु शिक्षा से अलग नहीं। प्रातिशाख्यों के लिए पार्षद शब्द का भी प्रयोग मिलता है। पार्षद या परिषद् का अर्थ है पर्षद से सम्बन्धित ग्रन्थ।

प्रतिशाखेषु भवम् – प्रातिशाख्यम् , इस व्युत्पत्ति के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों की जितनी शाखायें थी, उतने ही प्रातिशाख्य ग्रन्थ रहे होंगे। महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार वेदों की ११३१ शाखाओं का उल्लेख मिलता है-

''**एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बह्वृचम् नवधाऽथर्वाणो वेदः**'' पस्पशा. महाभाष्य, तो इतने ही प्रातिशाख्य ग्रन्थ होने चाहिए। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रातिशाख्य कुछ शाखाओं की सामुदायिक ध्वनि शास्त्रीय रचनाओं का नाम है। गार्ग्य गोपालयज्वा ने माना है कि दो तीन शाखाओं का सामूहिक प्रातिशाख्य होता है, यथा-

**तथा शाकल वाष्कल शाखाद्वय प्रसिद्धम्।** वैदिकाभरण ४.११

सम्प्रति उपलब्ध प्रातिशाख्यों के रचना काल के क्रम के विषय में भी विद्वानों में मतभेद हैं। फिर भी लगभग सभी विद्वान् ऋग्वेद प्रातिशाख्य को सर्वप्राचीन स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद प्रातिशाख्य के बाद तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, फिर वाजसनेयि प्रातिशाख्य, चतुरध्यायिका, ऋगृतन्त्र तथा अथर्व प्रातिशाख्य जो सबसे अर्वाचीन है, का क्रम है।

पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी ने आश्वलायन प्रातिशाख्य, वाष्कल प्रातिशाख्य, शाङ्ख्खायन प्रातिशाख्य एवं नारायणीय प्रातिशाख्य के भी प्राप्त होने का उल्लेख किया है।

प्रातिशाख्यों के रचनाकाल के क्रम के विषय में भी विद्वानों में मतभेद हैं, तथापि सभी विद्वान् ऋग्वेद प्रातिशाख्य को सर्वप्राचीन स्वीकार करते हैं, ततः तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, वाजसनेयि प्रातिशाख्य, चतुरध्यायिका, ऋक्तन्त्र तथा अथर्ववेदीय प्रातिशाख्य, इस क्रम को स्वीकार तथा सर्वमान्य माना जाता है।

**प्राक्तन कार्य-**

अनेक विश्वविद्यालयों, संचार माध्यमों तथा विद्वानों से परिचर्चा के उपरान्त मेरे संज्ञान में यजुर्वेदीय प्रातिशाख्यों को आधार बनाकर निम्नलिखित कार्य हुये हैंः-

१. अष्टाध्यायीशुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ययोः मतविमर्शः

विजयपाल विद्यावारिधिः, रामलाल कपूर ट्रस्ट,सोनीपत,हरि. मई १९८३

२. पाणिनीयवैदिकस्वरसूत्राणां यजुर्वेदीयप्रातिशाख्ययोः स्वरसूत्रैः साकं सामिक्षिकमध्ययनम्

लल्लु प्रसाद शुक्ल, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद १९९५

३.वाजसनेयितैत्तिरीयप्रातिशाख्ययोः वर्णोच्चारणविषयकतुलनात्मकमध्ययनम्

सच्चिदानन्द शुक्ल, गंगानाथ झा केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, १९९८

४.शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य - एक परिशीलन

उमेश सिंह, कला प्रकाशन, वाराणसी १९९९

५.कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य - एक अनुशीलन

डा० ऊषा शर्मा, कला प्रकाशन, वाराणसी २००५

६.तैत्तिरीयप्रातिशाख्य - एक परिशीलन

डा० आनन्द कुमार श्रीवास्तव, वाणी मन्दिर वाराणसी १९९९

उपर्युक्त सभी कार्य मूल प्रातिशाख्यों को ही आधार बनाकर किये गये हैं। इसमें टीकाकारों के मतों का तृणस्पर्श न्यायवत् ही समावेश किया गया है, किन्तु प्रकृत कार्य तैत्तिरीय प्रातिशाख्य पर उपलब्ध दो प्रमुख टीकाग्रन्थों त्रिभाष्यरत्न जो प्राचीन टीका है एवं वैदिकाभरण जो अपेक्षाकृत अर्वाचीन है, को आधार बनाकर किया जायेगा।

**तैत्तिरीय प्रातिशाख्य**

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य ऋग्वेदप्रातिशाख्य के उत्तर की रचना है। यह कृष्णयजुर्वेद का एकमात्र उपलब्ध प्रातिशाख्य है। इसे कृष्णयजुर्वेद प्रातिशाख्य भी कहते हैं। इसका सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद की औखेय शाखा से है। यह प्रातिशाख्य दो प्रश्नों (प्रपाठकों) में विभक्त हैं। दोनों प्रश्नों में **१२-१२** अध्याय होने से कुल **२४** अध्याय तथा कुल **५६८** सूत्र हैं। इस प्रातिशाख्य के रचनाकार के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ तैत्तिरीय संहिता के पदपाठकार आत्रेय को इसका कर्त्ता मानते हैं तो कुछ कार्तिकेय को। कार्तिकेय कौन हैं? ये स्पष्ट नहीं।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के रचना काल का अनुमान भी बाह्यसाक्ष्यों से निर्धारित करते हैं। जिस प्रकार इस प्रातिशाख्य में पाणिनीय पारिभाषिक शब्दों का अन्य प्रकार का अर्थ किया है, यथा 'लोप' का अर्थ अदर्शन न करके विनाश किया है; 'प्रत्यय' शब्द का प्रयोग किसी पारिभाषिक शब्द के लिए न करके आगम के लिए किया है, ऐसे ही 'प्रवाद' शब्द का प्रयोग विभक्ति के लिए किया है जो कि अपाणिनीय है। कीथ के मतानुसार यास्क को जिन प्रातिशाख्यों की जानकारी थी, उनमें तैत्तिरीय प्रातिशाख्य भी समाविष्ट है। अतः कह सकते हैं कि इस प्रातिशाख्य का रचना काल पाणिनि के काल ई० पू० पंचम शताब्दी से उत्तर तथा यास्क के काल ई० पू० सप्तम शताब्दी से उत्तर का है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य सूत्र संख्या की दृष्टि से लघु होते हुये भी विषय की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वर्णो के स्परूप तथा उनके उच्चारण प्रकार का जितना सूक्ष्म विवेचन यहाँ किया किया है, उतना अन्य प्रातिशाख्यों में नहीं । प्रग्रह स्वरों एवं अनुस्वारागम विषयक नियमों का भी विस्तार से वर्णन है। यहाँ चार प्रकार की संहिताओं का वर्णन है, यथा -पद, अक्षर, वर्ण और अंग संहिता। प्रातिशाख्यकार ने अपने मत को

स्पष्ट करने के लिए २० से अधिक आचार्यो का नामोल्लेख किया है। इस प्रातिशाख्य के संहिता अंशों के लिए पारिभाषिक नामों का ग्रहण किया गया है, यथा- **अग्नि (३/६)** चतुर्थ काण्ड।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य की तीन टीकायें होती हैं- १. माहिषेय कृत 'पदक्रमसदन' २. सोमयार्य कृत 'त्रिभाष्यरत्न' तथा ३. गार्ग्य गोपालयज्वा कृत 'वैदिकाभरण'। उत्तरवर्ती दोनों टीकाओं त्रिभाष्यरत्न तथा वैदिकाभरण का समीक्षात्मक अध्ययन करना ही शोधार्थी का उद्देश्य है, क्योंकि क्या कारण है कि एक ही सूत्र की व्याख्या में दोनों टीकाकारों का सैद्धान्तिक मतभेद हैं ? इसके मूल में जाने का ही शोधार्थी का लक्ष्य है। अनेक सूत्रों की व्याख्या में दोनों टीकाओं में मतवैभिन्य प्राप्त होता है। वैदिकाभरणकार ने अपने भाष्य में अनेक स्थलों पर त्रिभाष्यरत्नकार के मत को उद्धृत कर के अपनी पूरी शक्ति के साथ उस का खण्डन किया है यहाँ तक कि उसके लिये बालिश शब्द का प्रयोग किया है। ( वैदिकाभरण ६.२३) । तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में सोमयार्य द्वारा स्वीकृत वर्णो की संख्या ६० है, पर गार्ग्य गोपालयज्वा ५६ वर्ण मानते हैं। त्रिभाष्यरत्नकार द्वारा पृथक्-पृथक् वर्ण के रूप में गृहीत १ नासिक्य तथा ४ यम के स्थान पर वैदिकाभरणकार ने ५ नासिक्यों की गणना की है। ऐसे ही वैदिकाभरणकार त्रिभाष्यरत्नकार के समान जटा पाठ को इस प्रातिशाख्य का विषय नहीं मानते, इत्यादि अनेक ऐसे तथ्य इन दोनों टीका ग्रन्थों में विद्यमान हैं, जिन्हें शोधार्थी द्वारा विश्लेषण विधि का उपयोग करते हुए प्रकाश में लाने का प्रयास करना तथा परवर्ती ग्रन्थकारों पर उपलब्ध वाङ्मय का क्या प्रभाव हुआ इसका मूल्यांकन करना भी शोधार्थी का उद्देश्य है।

विद्वज्जनों से विनम्र निवेदन है कि शोधार्थी को प्रकृत शोध करने की अनुमति एवं मार्गदर्शन प्रदान करें।

शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत विषय को निम्नलिखित अध्यायों में विभक्त किया जायेगा-

# त्रिभाष्यरत्न एवं वैदिकाभरण का समीक्षात्मक अध्ययन

**प्रथम अध्याय - प्रातिशाख्य ग्रन्थ - एक परिचय**

क. प्रातिशाख्यों का उद्भव, संख्या, क्रम, स्वरूप , महत्त्व तथा प्रतिपाद्य विषय

ख. त्रिभाष्यरत्न और वैदिकाभरण

**द्वितीय अध्याय - वर्णसमाम्नाय प्रकरण**

वर्णसमाम्नाय, संख्या, विभाजन, विभाजन का आधार, स्वर, व्यंजन एवं उनके अवान्तर विभाजन

**तृतीय अध्याय - वर्णोच्चारण प्रकरण**

वर्णोच्चारण, शुद्ध उच्चारण का महत्त्व, उच्चारणावयवों का परिचय, स्थान, प्रयत्न, करण, उच्चारण करण तथा उच्चारण करण के आधार पर स्वरों का विभाजन

**चतुर्थ अध्याय - संधि प्रकरण**

संहिता और पद, संहिता के प्रकार- अक्षर संहिता, वर्ण संहिता, अंग संहिता, पद संहिता, स्वर, व्यंजन, विसर्जनीय, नति सन्धि।

**पंचम अध्याय — स्वर प्रकरण**

स्वर, स्वरों का महत्त्व, स्वरों का स्वरूप (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित), स्वरित स्वरों के प्रकार, उदात्त और प्रचय, विक्रम स्वर।

**षष्ठ अध्याय - प्रग्रह(प्रकृतिभाव) प्रकरण**

**सप्तम अध्याय - मूल्यांकन एवं उत्तरवर्ती पर प्रभाव**

**उपसंहार- अध्ययन का निष्कर्ष**

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

### मूल ग्रन्थ


१. अष्टाध्यायी (अनुवृत्ति–उदाहरण–वार्त्तिक– गणपाठादि सूची संहिता)

डॉ० अभिमन्यु, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली २०११

२. तैत्तिरीय संहिता सम्पादक - धूपकर यज्ञेश्वर शास्त्री, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९५७

३. तैत्तिरीय प्रातिशाख्यम् सम्पादक : पाठक जमुना, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी २००६

४. तैत्तिरीय प्रातिशाख्यम् (त्रिभाष्यरत्न एवं वैदिकाभरण टीका सहित)

सम्पादक- आर. शाम शास्त्री के रङ्गाचार्य, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली १९८५

५. निरुक्त यास्काचार्य कृत

६. महाभाष्यम् (प्रदीपोद्योतभासितम्) पतंजलिः, सम्पादक- शास्त्री भार्गव, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, दिल्ली १९८८


### सहायक ग्रन्थ-


१. अष्टाध्यायीशुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्ययोः मतविमर्शः

विद्यावारिधिः विजयपालः, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा १९८३

२.पाणिनीयवैदिकस्वरसूत्राणां यजुर्वेदीयप्रातिशाख्ययोः स्वरसूत्रैः साकं सामिक्षिकमध्ययनम्

लल्लु प्रसाद शुक्ल, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद १९९५

३.वाजसनेयितैत्तिरीयप्रातिशाख्ययोः वर्णोच्चारणविषयकतुलनात्मकमध्ययनम्

सच्चिदानन्द शुक्ल, गंगानाथ झा केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, १९९८

४. कृष्णयजुर्वेद प्रातिशाख्य - एक अनुशीलन

शर्मा उषा, कला प्रकाशन, वाराणसी २००५

५. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य - एक परिशीलन

श्रीवास्तव आनन्द कुमार, वाणी मन्दिर, वाराणसी १९९९

६. शुक्लयजुर्वेद प्रातिशाख्य - एक परिशीलन

सिंह उमेश , कला प्रकाशन, वाराणसी १९९९

७. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास

सम्पादक - पाण्डेय ओम प्रकाश,

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, १९९७

८. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास

मीमांसक युधिष्ठिर, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा १९९४

९. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास

वर्मा सत्यकाम, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली १९७१